ॐ

भक्ति ज्ञान योग संग्रह

Bhakti Gyan yog Sangraha

संग्रह कर्त्ता

भूमानन्द ब्रह्मचारी

भगवद्भक्ति आश्रम

रामपुरा, रेवाड़ी

द्वितीय बार २००० | सं० १९८० | मूल्य "प्रेम"

साधारण नियम

१—मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है कि सद्गुरुकी शरणमें जावे और उनकी कृपा सम्पादन करनेके लिये शुद्ध चित्तसे उनकी सेवा करे।

२—उन सद्गुरुके वचनोंपर दृढ़ विश्वास रखे।

३—एक ही मत मार्गका अनुसरण करे।

४—साधु सज्जनका सत्संग करे।

५—विषयोंके आधीन न हो।

६—शत्रुओंको मित्र बनावे।

७—अधिक उपाधि न बढ़ावे।

८—निरन्तर सारा सारका विचार करता रहे।

९—भूत मात्रपर दया रखे।

१०—अहर्निश परमात्माका ध्यान करके उनपर दृढ़ आस्था रखे।

प्रार्थना

हे परमेश्वर! परमपिता परमात्मन्! आप हमारे संरक्षक और सहायक तथा प्रेरक हैं। हम सब मिलकर एक तुम्हारी ही भक्ति करें, तुम्हारे चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शिर झुकाते रहें और एकमात्र तुम्हारी हो सहायता चाहें। ऐ हमारे आत्मा जगदीश्वर! आप अनन्त क्षमास्वरूप और दयालु हो। हे करुणासागर! हम तुम्हें छोड़कर और किसकी शरण लें। केवल एकमात्र तुम ही हमारे आधार और अधिष्ठान हो। हे हमारे सर्वस्व परमात्मन्! हम तुम्हारे पवित्र चरणोंको बारंबार प्रणाम करते हैं। आपही हमारी टेक हो और पत रखनेवाले हो, प्रतिज्ञापर आपही दृढ़ताके स्थितिस्थापक हो। हे अनन्त! अपार प्रकाश-स्वरूप, पवित्र ज्योति परमात्मन्! आप हमको श्रेयस्कर श्रेष्ठ मार्गसे अपनी प्राप्तिकी ओर ले चलिये, आप ही हमारे सत्-पथ-प्रदर्शक नेता तथा संचालक हैं। हे अन्तर्यामिन्! हम तेरे हैं, हमको अन्तर्यामी रूपसे प्रेरणा करो कि हम तेरे उस मार्गपर चलें कि जिसपर तेरे पूर्ण भक्त ऋषि महर्षि चले हैं। और जिस मार्ग द्वारा तुमको:प्राप्त हो चुके हैं। जिनपर तुम्हारा परम अनुग्रह तथा प्रसाद हुआ हो। और हे सर्व शक्तिमान्! हमारे प्रभु हमें उस मार्गसे कभी मत चलाओ जिसपर तेरे अभक्त चले हों, और तुम्हारी प्रसन्नतासे हम कभी वंचित न

रहें। हे प्रभो! तुम हमारे अन्तर्यामी प्रेरक सखा हो, हम तुम्हारी ही शरण हैं। अतएव हमारी रक्षा करो। हे जगदीश्वर जगदाधार! हमको वह पवित्र दृढ़ात्मिका बुद्धि प्रदान करो, कि जिसमें केवल एकमात्र तुम्हारा ही दृढ़ विश्वास तथा निश्चय हो। हमको वह अहंकार दो जिसमें हम अपना आपा तुमको कह सकें, मनमें तुम्हारा शिव संकल्प उठे, चित्तमें तुम्हारा ही चिन्तन रहे, हमारे नेत्र और हृदय खुले हों और उनपर तुम्हारा पूरा अधिकार हो। हमारे सबके द्वारा केवल आपकी जय हो। आप हमारे जीवनके नियन्ता प्राणस्वरूप हो। हे स्वामिन्! हमारी प्रत्येक क्रियायें और चेष्टायें आपके चरणोंमें समर्पण होवें। हमारे भाव महान् उदार तथा गम्भीर हों। हम सब प्राणीमात्रको अपना ही आत्मस्वरूप देखें। और सबकी भलाईमें अपनी भलाई समझें, अहर्निश परोपकारमें रत रहें और तुम्हारी ही भक्तिका सर्वत्र प्रचार करते हुए, अपने जीवनको सफल करते हुए, तुम्हारे पवित्र ज्योतिर्मय चरणोंके समीप बैठनेके योग्य बनें। हे पतितपावन! दीनोंके उद्धार करनेवाले परमात्मन्! हमको ऐसी उदार बुद्धि दीजिये कि जिससे हम दीन-दुखियोंकी सहायता सच्चे हार्दिक भावसे करें। हमें तुम्हारे प्रेममें ही जीवन प्रिय हो। हे विश्वात्मा! विश्व-स्वरूप!! हम तुम्हारे भक्ति-मार्गपर चलते हुए महान् दुःखों-को भी सानन्द सहन कर सकें, तुम्हारे भजनमें दृढ़ रहें, सबके साथ पवित्र प्रेम करें। हे प्रेमाकर! हम सबको अपना ही

आत्मा जानें, हमारा आचरण सबकी भलाईके लिये हो। हे अनन्तशक्ति परमात्मन्! आपकी शक्तियां अपरिमित बेअन्दाज हैं, तुम्हारी दातसे कोई बढ़ नहीं सकता है। तुम्हारी दक्षिणा ज्योति की तरह सबके ऊपर जगमगा रही है। तुम्हारी शक्तियों और सच्चे उदार वचनों, मेहरबानियोंका कोई नियन्ता नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि उसने मुझे नहीं दिया है। तुम्हारे द्वारसे कोई निराश नहीं गया है। सबने अभीष्ट फल प्राप्त कर जीवनका फल पाया है। हे राम, कृष्णादि अनन्त नामों और रूपोंके धारण करनेवाले हमारे सच्चे प्रभु! अन्तमें हमारी यही प्रार्थना है, कि हम तेरे सच्चे भक्त बने, तेरी ही भक्तिका प्रचार करें, हम सबके द्वारा तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो, सर्वत्र तुम्हारा ही राज हो। हे अनन्त अपार ज्ञानानन्दस्वरूप! आपको हमारा अनन्त धन्यवाद हो और आपका हमको आशीर्वाद हो। अतएव साञ्जली बद्ध आपको भूयोपि नमस्कारोंपर नमस्कार है।

॥ ओ३म् शंकरोतु शंकरः ॥

अथ मंगलम्

श्री ओऽम् तत् सत् श्रीसच्चिदानन्द

स्वरूपाय गुरवे नमः

॥ अथ मंगलम् ॥

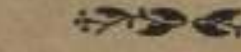

यतोऽनंत शक्तेरनन्ताश्च जीवाः,
यतो निर्गुणा दप्रमेया गुणास्ते।
यतो भाति सर्वं त्रिधा भेद भिन्नं,
सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥१॥
यतो बुद्धिरज्ञान नाशो मुमुक्षो,
र्यतः सम्पदो भक्त सन्तोषिकाः स्युः।
यतो विघ्न नाशो यतः कार्य सिद्धिः,
सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥२॥
यतोऽनन्त शक्तिः सशेषो बभूव,।
धरा धारणेऽनेक रूपे च शक्तः।
यतो नेकधा स्वर्ग लोका हि नाना,

सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥३॥
यतो वेद वाचोति कुण्ठा मनोभिः ।
सदा नेति नेतीति यत्ता गृणंति ॥
परब्रह्म रूपं चिदानन्द भूतं ।
सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥४॥
त्वदीय सत्ता धर मेक दन्तं,
गणेश मेकं त्रय बोधितारम् ।
सेवन्त आपुस्त मजं त्रिसंस्थाः,
तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥५॥
ततः स्वया प्रेरित एव नादः,
तेनेद मेवं रचितं जगद्वै ।
आनन्दरूपं समभावसंस्थं,
तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥६॥
त्वदाज्ञया भाति ग्रहाश्च सर्वे,
नक्षत्र रूपाणि विभान्ति खे वै ।
आधार हीनानि त्वया धृतानि,
तमेक दन्तं शरण ब्रजामः ॥७॥

मां पातु देवोऽखिल देवतात्मा,
संसारकूपे पतितं गभीरे ।
तन्नाम दिव्यं वर मन्त्र मूलं,
धुनोतु मे सर्व मघं हृदिस्थम् ॥८॥
हे चन्द्रचूड़ मदनान्तक शूलपाणे,
स्थाणो गिरीश गिरीजेश महेश शम्भो ।
भूतेश भीतिभवसूदन मामनाथं,
संसार दुःख गहनात् जगदीश रक्ष ॥९॥
हे विश्वनाथ शिव शंकर देव देव,
गंगाधर प्रमथनायक नन्दिकेश ।
वाणेश्वरान्धकरिपो हर लोकनाथ,
संसारदुःखगहनात् जगदीश रक्ष ॥१०॥
श्री मन्महेश्वर कृपामय हे दयालो,
हे व्योमकेश शितिकंठ गणाधिनाथ ।
भस्मांगराग नृकपाल कपालमाल,
र संसार दुःख गहनात् जगदीश रक्ष ॥११॥
सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्त्तिः,

ज्योतिर्मयानन्द घनश्चिदात्मा ।
अणोरणीयानुरुशक्ति रेकः,
स ईश्वरः पातु भयाद शेषात् ॥१२॥
त्रैलोक्यनाथं सरसीरुहाक्षं ।
दयानिधिं द्वंन्द्वविनाशहेतुम् ॥
महाबलं वेदनिधिं सुरेशं ।
सनातनं राम महं भजामि ॥१३॥
वेदान्त वेद्यं कवि मीशितारं,
अनादि मध्यान्त मचिंत्य माद्यम् ।
अगोचरं निर्मल मेक रूपं,
नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥१४॥
मुनीन्द्र गुह्यं परिपूर्णकामं,
कलानिधिं कलमषनाशहेतुम ।
परात्परं यत् परमं पवित्रम्,
नमामि रामं महतो महान्तम् ॥१५॥
अशेषसंसारविहारहीनं,
नारायणं निमल मादि देवम् ।

नतोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथं,
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥१६॥
निरञ्जनं निष्प्रति मं निरीहं,
निराश्रयं निष्कलमप्रपंचम्।
नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं,
निरन्तरं राम महं भजामि ॥१७॥
यन्मण्डलं ज्ञान घनं त्वगम्यं,
त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्।
समस्त तेजोमय दिव्य रूपं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१८॥
यन्मण्डलव्याधिविनाश दुःखं,
यद्ऋग्यजुः सामसु संप्रगीतम्।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१९॥
यन्मण्डलं वेद विदो वदन्ति,
गायन्ति यच्चारण सिद्धसंघाः।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः,

पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥२०॥
यन्मण्डलं सर्व जनेषु पूजितं,
ज्योतिश्च कुर्या दिह मर्त्यलोके।
यत्कालकालादि मनादि रूपं,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥२१॥
यन्मण्डलं विष्णु चतुर्मुखाख्य,
यदक्षरं पाप हरं जनानाम्।
यत्काल कल्पक्षय कारणंच,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥२२॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः,
पापात्मना कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुल जनप्रभवस्य लज्जा,
तां त्वां नताःस्म परिपालय देवि विश्वम् ॥२३॥
देवि प्रपन्नार्ति हरे प्रसीद,
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं,
त्वमीश्वरी देवि चरा चरस्य ॥२४॥

यस्याः प्रभाव मतुलं भगवाननन्तो,
ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तु मलं बलं च ।
सा चंडिकाऽखिल जगत् परि पालनाय,
नाशाय चा शुभभयस्य मतिं करोतु ॥२५॥
हेतुः समस्त जगतां त्रिगुणापि दोषै.
र्न ज्ञायसे हरि हरादिभि रप्य पारा ।
सर्वाश्रया खिल मिदं जगदंश भूत,
मव्याकृताहि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥२६॥
प्रातर्नमामि महिषासुरचण्ड मुण्ड,
शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाश दक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां,
चण्डीं समस्त सुर मूर्ति मनेक रूपाम् ॥२७॥
ध्येयं वदन्ति शिवमेवहि केचिदन्ये,
शक्तिं गणेश मपरे तु दिवाकरं वै ।
रूपैस्तु तै रपि विभासि यतस्त्वमेव,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शंखपाणे ॥२८॥
नो सोदरो न जनको जननी न जाया,

नवात्मजो न च कुलं विपुलं बलं वा ।
संदृश्यते न किल कोऽपि सहायको मे,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शंखपाणे ॥२९॥
नोपासिता मद् मपास्य मया महान्तः,
तीर्थानि चास्तिकधिया नहि सेवितानि ।
देवार्चनं च विधिवन्न कृतं कदापि,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शंखपाणे ॥३०॥
दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति,
चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहन्ति ।
संजीवनं च परहस्तगतं सदैव,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शंखपाणे ॥३१॥
या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ्रवस्त्रा वृता
यावीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना
या ब्रह्माच्युत शंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता.
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ३२
शुद्धांब्रह्मविचारसारपरमा माद्यां जगत् व्यापिनीं
बीणापुस्तकधारिणीमभयदांजाड्यान्धकारापहाम् ।

हस्ते स्फाटिक मालिकां विदधतींपद्मासनेसंस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ३३
उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं,
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लंकां,
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥३४॥
मनोजवं मारुततुल्य वेगं,
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं बानरयूथमुख्यं,
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥३५॥
आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं,
ज्ञानस्वरूपं निज बोधरूपम् ।
योगीन्द्रसेव्यं भवरोग वैद्यं,
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥३६॥
बलदं सकलं मतिदं विमलं ।
सवितारमजं विनयेन विभुम् ॥
अनघं भगवन्तमनादि गुरुं ।
प्रणिपत्य नमामि नमाम्यसकृत् ॥३७॥

भजन ॥१॥

दीनानाथ दयानिधि स्वामी कौन भाँति मैं तुम्हें रिझाऊं ॥टेक॥
श्रीगंगा चरणोंसे निकसी शूची नीर कहांसे प्रभु लाऊं ।
कामधेनु कल्पवृक्ष तुम्हारे कौन सो पदार्थ भोग लगांऊं ॥१॥
चार वेद तुम मुखसे भाषे और कहा प्रभु पाठ सुनाऊं ।
अनहद बाजे बजत तुम्हारे ताल मृदङ्ग क्या शङ्ख बजाऊं ॥२॥
कोटि भानु थारे नखकी शोभा दीपक ले प्रभु कहा दिखाऊं ।
लक्ष्मी थारी चरणन की चेरी कौन द्रव्य प्रभु भेट चढ़ाऊं ॥३॥
तुम तिरलोकीके कर्त्ता हर्त्ता तुम्हें छोड़ प्रभु कौन पै जांऊं ।
सूर श्याम प्रभु विपत बिदारन मन बांछित फल तुमहीसे पाऊं ॥४॥

भजन ॥२॥

मन परदेशी हो ये नहीं अपना देश ॥ टेक ॥
सत् का कहना सत् में रहना आनन्दरूप किसी का भय ना ।
जो कोई कहै सभी की सहना ये ही रटन हमेश ॥१॥
गुरुका बचन सत्य कर मानो जगत जाल झूठा कर जानो ।
तत्त्व मसिका रूप पिछानो कट जाय करम कलेश ॥२॥
जो दीखे सो रूप हमारा कोई नहीं है हमसे न्यारा ।
मित्र और शत्रु कोई न हमारा मिट गये राग और द्वेष ॥३॥
शाह गुरू शुकदेव बिराजे चरणदास चरणोंमें साजे ।
गुरुके बचन कभी नहीं त्यागे यही सत्य उपदेश ॥४॥

भजन ॥३॥

शिव शिव रटत मन आनन्द ॥ टेक ॥
जाके सुमरत विघ्न बिनशत, कटत यमको फन्द ।
तीन नेत्र विशाल झलकत, तिलक माथे चन्द ॥
ओढ़ना बाघम्बरा शिव, भणत छबि मकरन्द ।

भूत प्रेत वेताल जङ्गम, लिये फिरे शिव सङ्ग ॥
वृषभ वाहन रुचि धतूरा, भोगता विष भङ्ग ।
पारवति पति शरण की गति, सूर मन आनन्द ॥

भजन ॥४॥

मरहम हो सोई जाने भाई साधो ऐसा देश हमारा है रे ॥टेक॥
बिन बादल बिजली वहां चमके बिन सूरज उजियारा है रे।
बिना नयन वहां मोती पिरोवें बिना स्वर शब्द उचारा है रे ॥१॥
भँवर गुफामें अनहद बाजे मुरली बीन सितारा है रे।
निरमल बूंन्द मिली दरियामें नहीं मीठा नहीं खारा है रे ॥२॥
जात वरण वहां सूझत नाहीं ना वहां वेद विचारा है रे।
वहां जाय ब्रह्म बन बैठे कहन सुननसे न्यारा है रे ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो पहुंचेगा पहुंचन हारा है रे।
इस पदको जो समझत बूझत अलख लखे सोई प्यारा है रे ॥४॥

भजन ॥५॥

अजि एजी साधो सहज समाधी भली।
गुरु प्रताप भयो जा दिनसे श्रुत अनन्त चली ॥ टेक ॥
आंखन मूंदूं कानन रूंघूं काया कष्ट न धारूं।
खुले नयन मैं हँस हँस कर देखूं सुन्दर रूप निहारूं ॥१॥
कहूं सो नाम सुनूं सो सुमरण खाऊं पीऊं सो पूजा।
गृह उद्यान एक सम जानो भाव मिटाया दूजा ॥२॥
जहां जहां जाऊं सो परि करमा जो कुछ करूं सो सेवा।
जब सोऊं तो करूं दण्डवत् पूजूं और न देवा ॥३॥
कह कबीर यह अन मन रहनी सो प्रकट कर गाई।
सुख दुःखसे परे प्रेम सुख ताहीमें रह्यो समाई ॥४॥

भजन ॥६॥

जिसको तू नर तन मानत वह आप रूप भगवान है ॥ टेक ॥
अहंकार ने जबसे घेरा कहने लगा मेरा और तेरा ।
भूल गया निज रूप अनेरा तू सर्वज्ञ सुजान है ॥१॥
मैं हूं देह देह है मेरी केवल यही भूल है तेरी ।
पांच तत्त्वकी यह तो ढेरी ज्ञान क्यों भया अज्ञान है ॥२॥
बुरी भली करनी जग करे है बन्धनमें तभी तो पड़े है ।
निष्क्रियको नहिं कछु डर है तोहे कर्म की आन है ॥३॥
सत् चित् आनन्द भाव सभारो पांच कोश ते होजा न्यारो ।
नाम रूप कुछ नाह निहारो यही तो निर्म्मल ज्ञान है ॥४॥

भजन ॥७॥

जो कोई चित्तसे मोहे ना बिसारे मैं ना बिसारूं प्रण है यही मेरा ॥टेक॥
धर्म प्रिय हो धर्म बढ़ाऊं सफल कार्य कर अर्थ बनाऊं ।
मुक्ति चाहे तो पार लगाऊं पल क्षण माहिं न लागत बेरा ॥१॥
रोग हरूं चिन्ता सब टारूं अभय करूं शत्रुन को मारूं ।
अचल भक्त जन वेग उबारूं सेवा करूं आप बन चेरा ॥२॥
मेरा नाम भगत सुख दायक सदा विपत्तिमें होत सहायक
जो कोई रटत कृष्ण यदुनायक ताके हृदय करत नित डेरा ॥३॥

अथ योगानु शासनम्

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥

'अथ योगानुशासनम्'

अब योगशास्त्र का वर्णन किया जाता है जिसमें साधनोंकी ऐसी सुगम रीति वर्णित है, जिसके थोड़ेसे अभ्याससे मनुष्य-की अन्तर्दृष्टि इतनी बढ़ जाती है कि वह दूर २ के शब्द सुन सकता है, दूसरेके चित्तके हालातको जान सकता है। और भी असाधारण शक्तियाँ सब मनुष्योंसे कहीं बढ़कर प्राप्त कर, मनुष्य सम्पूर्ण क्लेशोंसे छूट, कर्मके बन्धनको काट आत्म-ज्ञान और मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

'योगश्चित्तवृत्तिर्निरोधः'

चित्तकी वृत्तिको रोकनेका नाम योग है। चित्त उसका नाम है जिससे मनुष्यको बाह्याभ्यन्तरके विषयोंका ज्ञान होता है। 'चिति संज्ञाने' धातुसे बना है। इसको अन्तःकरण भी कहते हैं। वेदान्तमें इसको चार शक्तियां मानी हैं। प्रथम वह जिसके द्वारा मनुष्य इन नेत्रोंसे वा इन्द्रियोंसे साधारणरूप देखता है, वा जानता है। दूसरी वह शक्ति जिससे पदार्थोंके विशेष धर्मोंका ज्ञान होता है और एक पदार्थ दूसरेसे भिन्न प्रतीत होता है जैसा कि आमसे अनार। तीसरी वह शक्ति, जिसके द्वारा पदा-र्थोंमें भिन्न भाव समझ, उसको अपना या पराया बना लेता है। जैसे कि फल मेरे हैं। चौथी वह शक्ति जिसके द्वारा वस्तुके गुण वा अवगुण, उत्तमता और अधमता आदि जानी जाती हैं। जैसे कि आम खट्टा होता है, पित्तकारक है; अनार शीतल

है, पित्तको शान्त करता है। चित्त (अन्तःकरण) का साधारण-रूपसे कोई आकार नहीं होता। इसका धर्म है कि जिस पदार्थके साथ इसका सम्बन्ध होता है उसीका रूप धारण कर लेता है, तब ही जीवको विषयोंका ज्ञान होता है। सो इससे सिद्ध हो गया कि जबतक यह चित्त किसी पदार्थका आकार पूर्ण-रूपसे धारण नहीं करता तबतक उस वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। मनुष्यको इसलिये चित्तको सब ओरसे खींचकर अपने लक्ष्य विषयकी ओर लगाना चाहिये। जिस समय चित्त सांसारिक विषय भोगनेकी अभिलाषामें इधर उधर भ्रमण करता है और स्थिर नहीं रहता उस समय इसमें रजोगुणप्रधान होता है। इसलिये महात्माओंने उस अवस्थाको रजोगुणी माना है, इसी प्रकार जब इसमें तमोगुण प्रधान होता है तो उस समय मनुष्य अज्ञानी और मूर्ख हो जाता है। मानों काम क्रोध लोभ मोहके वशमें हो ऊपरकी अवस्थाओंके लक्षको भूल जाता है। इस तमोगुणी अवस्थामें पारलौकिक विषयोंका ज्ञान नहीं होता। हां सत्वगुणीमें लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयोंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है। जबतक इन तीनों अवस्थाओंको उल्लंघन न कर ले तबतक जीव अपने स्वरूपको नहीं देख सकता। इन गुणोंका प्रभाव मनुष्योंमें भिन्न २ होता है, कई एक मनुष्य आत्मज्ञानके अधिक प्रेमी होते हैं, बहुतसे संसारके पदार्थमें मग्न रहते हैं और कई एक उभयतः भ्रष्ट होते हैं और मस्त पड़े रहते हैं, कई उदारचित्त होते हैं, कई द्रव्यके ऐसे प्रेमी होते है कि पैसा भी नहीं खर्च सकते; और बहुतसे दूसरोंको दुःख देनेमें तत्पर रहते हैं, कई शान्तस्वभाव सन्तोषी और गम्भीर होते हैं, बहुतसे चञ्चलस्वभाव और जोशसे भरे हुए होते हैं, और कई एक सुस्त, अधम श्रेणीके

होते हैं। यह गुण बालसे वृद्धतक पाये जाते हैं। जब सत्व गुण प्रधान होता है तब भिन्न २ पदार्थोंमें अनन्त अविनाशी एक ही परमात्मा देव प्रतीत होने लगते हैं। इसलिये वह सबके साथ प्रेम दया और न्यायपूर्वक बर्ताव करता है। फलकी इच्छा छोड़ निष्काम भावसे परोपकारके लिये सदा तत्पर रहता है, वरंच इसीलिये दूसरोंको भी यही उपदेश करता है और हानि-लाभ, तथा सुख-दुःख, वा स्तुति-निन्दामें, समचित्त रहता है। सतोगुणी पुरुष अभिमान-रहित, स्वतन्त्र, निर्भय, शूरवीर होता है और सब कार्योंको निज धर्म जानकर करता है। भगवान गीतामें कहते हैं—

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्यात् विवृद्धं सत्यमित्युतः॥

जब इस देहके सब द्वारोंमें अर्थात् इन्द्रियोंमें ज्ञानरूपी प्रकाशका प्रवाह बढ़ जाता है, तब यह समझना चाहिये कि सत्व गुण बढ़ रहा है। रजोगुणी भेदवादी होता है। सर्व जीवोंको भिन्न २ जानता है। वह उसके पेटमें तन्तुओंके समान सर्वशक्तिमान, अव्यय, अनन्त पुरुषका रूप नहीं देखता है जो समस्त जीवोंमें एक है। इसीलिये वह अहंकारसे अपनेको ज्ञानी मानता है, वह स्वार्थके बन्धनमें फंसकर दूसरेके साथ बेपरवाहीसे बर्ताव करता है, रजोगुणी अभिमानी है, फलकी लालसासे काम करता है, धनका बड़ा स्नेही होता है और अपने कार्यकी सिद्धिसे सन्तुष्ट और हानिसे महादुःखी होता है भगवान गीतामें कहते हैं—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामस्म स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभः॥

हे भारतकुलतिलक, रजोगुणके बढ़ जानेसे लोभ, अर्थात् धनादिक अधिक होनेपर भी उन्हें और बढ़ानेकी इच्छा करता है। अर्थात् संकल्पोंके रोकनेकी अध्यासता और स्पृहा, अर्थात् विषयोंके भोगनेकी इच्छा आदि लक्षण मनुष्यमें प्रकट होते हैं। तमोगुणीका चित्त संसारके भोगोंमें मग्न और आत्मविचारसे विमुख रहता है। इसके विचार अधम और तुच्छ होते हैं। तमोगुणी जब कोई काम करता है तो उसके शुभाशुभ फलका ज्ञान उसको नहीं होता और न यह समझ सकता है कि जिस कार्यको मैं करने लगा हूं मैं इसके योग्य हूं वा नहीं, मानों उससे हर एक काममें मूढ़ता होती है। तमोगुणी अतीव लोभी होता है और स्वार्थ-सिद्धिके लिये दूसरेके कामको बिगाड़ भी देता है। वरंच अपने कार्यकी सिद्धि हो या न हो परन्तु दूसरेकी हानि करके अतीव प्रसन्न होता है; और आप निरुद्यमी और आलसी होता है। जैसा गीतामें कहा है—

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोहमेव च।

तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥

हे कुरुनन्दन, तमोगुणके बढ़ जानेसे विवेककी हानि, निरुद्यमता, कर्तव्यको ढूंढनेसे हिचकना और व्यर्थ एकचित्तता आदि चिह्न मनुष्यमें उत्पन्न होते हैं और जब तीनों गुणोंको साम्य अवस्थामें ले जाता है तब मोक्ष हो जाता है। जिस प्रकार आदर्श अर्थात् शीशेमें मुखको न दीखनेके तीन विघ्न होते हैं, मल, उसका मैला होना, दूसरे दर्पण और मुखके बीचमें परदा होना तीसरे विक्षेप अर्थात् बार २ हिलना; इन दोषोंके कारण कोई

मनुष्य भले प्रकार दर्पणमें अपना मुख नहीं देख सकता, इसी तरह अंतःकरणके मल आवरण और विक्षेपके होनेसे अपने प्यारे परमात्माको कोई भी नहीं देख सकता है परन्तु जब निष्कामों द्वारा मल जो पाप है उनको नष्ट कर देता है और उपासना द्वारा विक्षेप अर्थात् चंचलता और जीवब्रह्मके एकत्व ज्ञानद्वारा आवरण जो अविद्या है उसका उच्छेद करता है, तब वह बहुत दिनोंका भूला हुआ अनन्त अपार सच्चिदानन्दस्वरूप अपने आप स्वयंही प्रकाशित हो जाता है। इसलिये चित्तकी वृत्ति अर्थात् तबदीली-को रोकना चाहिये जब यह चित्तवृत्तिका निरोध करता है तदा—

'दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'

चित्तकी समस्त वृत्तियोंके रुक जानेपर जीवात्मा अपने स्वरूपमें स्थित रहता है। चित्त झीलके स्वच्छ, शुद्ध और स्थित जलके समान है। जैसे पवनके चलनेसे उसमें लहर उठने लगती हैं और उसमें किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता। इसी प्रकार चित्तमें राग द्वेषादिकी लहरें उठनेसे अपना स्वरूप प्रतीत नहीं होता और जैसे जलके स्थित होनेपर उसमें मनुष्य अपना प्रतिबिम्ब भली भाँति देखता है। ठीक इसी प्रकार जब चित्तसे भी रागद्वेषादिकी तरंगें रुक जाती हैं तो उस समय जीव अपना रूप देखता है।

'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'

निरोधावस्थाके बिना अन्य अवस्थामें द्रष्टा चित्तकी वृत्तियोंको धारण कर लेता है अर्थात् जब योगी योग अवस्थामें नहीं होता

तब उसका चित्त विषयोंके साथ सम्बन्धित होनेसे वृत्तिरूप भासता है और उसके मलिन होनेसे मनुष्य अपने स्वरूपको नहीं देख सकता है। इसीलिये इस अवस्थामें द्रष्टाको वृत्ति रूप कहते हैं। परन्तु वास्तवमें जैसा कि स्फटिक मणि समीप रक्खे पदार्थोंके रंगमें रंगा हुआ दिखाई देता है वास्तवमें उसके स्वरूपमें कुछ भी भेद नहीं होता। इसी प्रकार द्रष्टा भी वृत्तियोंके प्रतिबिम्बसे वृत्तिरूप भासता है, परन्तु वास्तवमें उसमें कुछ भी भेद नहीं होता—

'वृत्तयः पंचतयः 'क्लिष्टाऽक्लिष्टा'

वृत्ति अर्थात् चित्तकी परिणाम-तबदीली पांच प्रकारकी होती है। और प्रत्येक परिणाम दुःखदायक और अक्लिष्ट सुखदायक भेदसे दो प्रकारका है। अर्थात् दृश्य पदार्थ असंख्य होनेसे चित्तकी वृत्तियां भी असंख्य होती हैं। इन असंख्य वृत्तियोंको पांच भागोंमें विभक्त किया हैं और फिर उन पांचों भागोंको क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेदसे द्विविध माना है। जिस वृत्तिमें आत्मविचार और ईश्वरध्यान हो और जो सत्व रज तम तीनों गुणों से रहित हो उसे अक्लिष्टवृत्ति कहते हैं। इससे विपरीत क्लिष्ट वृत्ति कहलाती है। क्लिष्ट वृत्तियोंको अक्लिष्ट वृत्तियोंसे रोका जाता है और अक्लिष्ट वृत्तियां परा वैराग्यसे रोकी जाती हैं—

'प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः'

वृत्तियोंके नाम यह हैं—प्रमाण सत्य ज्ञान उत्पन्न करनेवाली वृ , विपर्यय मिथ्या ज्ञान उत्पन्न करनेवाली वृत्ति, विकल्प कल्पित ज्ञान उत्पन्न करनेवाली वृत्ति, निद्रा ज्ञान रहित वृत्ति और स्मृति सुने हुए वा देखे हुए पदार्थोंका स्मरण करनेवाली

वृत्ति। मनुष्य-जीवनका मुख्योद्देश्य ज्ञानको प्राप्त करना है। और वह ज्ञान उक्त वृत्तियोंके विना होना असंभव है।

'तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि'

प्रमाणवृत्ति प्रत्यक्ष अनुमान और आगम भेदसे तीन प्रकारकी है। अर्थात् प्रत्येक स्थूल सूक्ष्म पदार्थका ज्ञान, निश्चयात्मक ज्ञान केवल निम्नलिखित रीतियोंसे होता है—चित्रका स्थूल वा सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा ज्ञेय पदार्थके साथ सम्बन्धित हो जानेपर पदार्थका ज्ञान होता है। ऐसे समयमें चित्तकी वृत्तियोंको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं और जब ज्ञेय पदार्थ इन्द्रियों द्वारा ग्रहण न किया जा सके तब उसके गुण वा लक्षणको ग्रहण करके सोचनेसे उक्त पदार्थका बोध होता है। ऐसी अवस्थामें चित्तज्ञान जाने हुए पदार्थोंके गुणोंसे ज्ञेय जानने योग्य पदार्थोंके गुणोंके सम्बन्धको सोचकर अपने लक्ष्यको विजातीय पदार्थोंसे भिन्न और सजातीय पदार्थोंसे युक्त करता है। जैसे कि दूसरे किसी स्थानमें धुआं देखकर यह निश्चय होता है कि वहां अग्नि अवश्य होगी क्योंकि अग्निके विना धुआं कभी नहीं होता। तथा किसी प्रकारका शब्द सुनतेसे प्रतीत होता है कि इसमें आकाश-पोल विद्यमान है। क्योंकि शब्द आकाशहीका गुण है। ऐसे समयमें चित्तकी वृत्तिको अनुमान प्रमाण कहते हैं और जब ज्ञेय पदार्थ और उसके लक्षण तथा गुण इन्द्रियों द्वारा ग्रहण न किये जायं तब उसका वर्णन सत्यवेत्ता ऋषिप्रणीत आर्षग्रन्थोंके पढ़नेसे होता है। ऐसे समयमें चित्तकी वृत्तिको आगम प्रमाण करते हैं। इन तीनों प्रमाणोंको जिनसे बाह्य पदार्थोंका ज्ञान होता है पतञ्जलि महर्षिने क्लिष्ट प्रमाण कहा है। परन्तु आभ्यन्तरिक विषयोंका ज्ञान बढ़नेसे जिससे

ईश्वरमें प्रेम और भक्ति बढ़ती है ये ही तीनों अक्लिष्ट प्रमाण हो जाते हैं।

'विपर्यय मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्'

विपर्यय उस वृत्तिको कहते हैं जिससे मिथ्या ज्ञान उदय हो और ज्ञेय वस्तुका यथार्थ ज्ञान न जाना जा सके। इसी वृत्तिके द्वारा प्रायः मनुष्यका श्वेत रेतमें, जल-सीपीमें चांदीकी भांति सम्पूर्ण ज्ञान भ्रान्तिरूप हो जाता है।

'शब्द ज्ञानानुपाति वस्तुशून्यो विकल्पः'

विकल्पवृत्ति उसको कहते हैं जिसमें शब्दमात्रके सुननेसे ही ज्ञान भासता है। वास्तवमें ज्ञेय वस्तु कुछ भी नहीं जैसा कि शशशृङ्ग या वन्ध्या अर्थात् बांझके पुत्र शब्द, सुनकर भ्रम होता है कि शशके सींग और बांझके पुत्र होते होंगे परन्तु वास्तवमें नहीं होते—

'अभाव प्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा'

निद्रा चित्तकी उस वृत्तिको कहते हैं जिसमें मनुष्यको अभाव प्रत्यक्ष हो। प्रत्यय शब्दसे बाह्य वस्तुओंका प्रतिबिम्ब जो चित्त ग्रहण करता है, तात्पर्य है और प्रतिबिम्बोंके अभावको अभाव प्रत्यय कहते हैं। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको ऐसा प्रतीत होता है कि मुझको किसीका ज्ञान नहीं, परन्तु इतना अवश्य जानता है कि मैं हूं जैसा कि घोर निद्रासे जागकर मनुष्य यह कहता है कि मैं आज बड़े आनन्दसे सोया। आनन्दसे सोनेका स्मरण ज्ञानके विना नहीं हो सकता। सत्यगुण प्रधान होनेसे इन्द्रियोंमें शिथिलता और बुद्धि अन्तर्मुख हो जाती है, और

सांसारिक विषयोंमें उसकी आसक्ति नहीं रहती। वरञ्च उसका अभाव प्रतीत होता है इस वृत्तिको अक्लिष्ट निद्रा कहते हैं। यह वृत्ति महात्मा जनोंमें पायी जाती है जैसा कि कबीरजी कहते हैं—

जागनसे सोवन भला जो कोइ जाने सोय।
अन्तर लौ लागी रहे सहजे सुमरण होय॥
जागनमें सोवन करे सोवनमें लौ लाय।
सुरत डोर लागी रहे तार टूट नहीं जाय॥

'अनुभूत विषया सम्प्रमोषः स्मृतिः'

जिस वृत्तिसे मनुष्य अनुभूत विषयोंको न भूले उसे स्मृति कहते हैं। चित्तकी वृत्तियोंसे प्रमाणविपर्यय विकल्प-जागृत अवस्थामें होती है। जब इनमेंसे किसी वृत्तिका नींदमें स्मरण हो तो उसको स्वप्न कहते हैं। सुषुप्तिमें इनका अभाव होता है—

'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः'

चित्तकी उक्त पांचों वृत्तियोंको रोकनेके लिये अभ्यास और वैराग्य दो साधन हैं जैसा कि गीतामें कहा है।

चित्तकी प्रत्येक वृत्तियां सुख वा दुःखसे उत्पन्न होती हैं और सुख दुःखादिका कारण राग होता है इसलिये वैराग्यसे तो चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है और अभ्यास द्वारा उस निरोध अवस्थामें दृढ़ता अथवा चिरकालतक रहनेकी स्थिति प्राप्त की जाती है।

'तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः'

निरोध अवस्थामें स्थिति प्राप्त करनेके लिये यत्न करनेको अभ्यास कहते हैं। अर्थात् स्थिति उस अवस्थाको कहते हैं जिस अवस्थामें चित्त वायुरहित स्थानमें स्थित दीपककी शिखाके समान प्रशान्त और स्थिर रहे ऐसी अवस्थाकी प्राप्तिके लिये उत्साहपूर्वक बारंबार यत्न करनेको अभ्यास कहते हैं। परन्तु वह अभ्यास इस प्रकार किया जाता है—

'सतु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारसेवितो दृढ़भूमिः'

नित्य निरन्तर चिरकालतक भक्ति द्वारा यत्न करनेसे अभ्यास दृढ़ होता है। बारंबार किसी कार्यमें यत्न करनेसे यह काम स्वाभाविक हो जाता है, फिर बिना यत्न वह कार्य होने लगता है और स्वभाव ऐसा दृढ़ हो जाता है कि फिर इसका पलटना बिना परिश्रमके असम्भव है। किसी स्वभाव-के उत्पन्न करनेमें जितना पुरुषार्थ आवश्यक है उसके छोड़-नेमें उससे भी अधिक पुरुषार्थ आवश्यक होता है। इसी-लिये किसी मुमुक्षुको कुछ काल साधन करके कुछ प्राप्ति न हो तो उसे निराश न होना चाहिये, वरञ्च धीरज धर, परिश्रम सहित यत्न करते रहना चाहिये। क्योंकि योग अवस्थामें दृढ़ताकी प्राप्तिके लिये सूत्रमें तीन बातें लिखी हैं—

'दीर्घकाल सेवितः

दीर्घकालतक यत्न करना चाहिये।

'नैरन्तर्य सेवितः'

यत्न निरन्तर व्यवधान-रहित होना चाहिये। कभी कभी करनेसे उद्देश्यसिद्धि नहीं होती। आरम्भमें प्रतिदिन नियत समयपर करना चाहिये और पीछे ऐसा स्वभाव डालना चाहिये

कि प्रतिक्षण हर समय सांसारिक काम करते हुए भी लौ परमात्मामें लगी रहे। जिससे कोई क्षण भी परमात्माके चिन्तनके बिना न जाने। यदि कोई कहे कि एक कालमें दो कार्य करना, बाहर काम और अन्दर लौ लगाना, असम्भव है; तो उसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा सारे ब्रह्माण्डको प्रकाश देता है परन्तु अपने स्थानसे कभी विचलित नहीं होता; इसी प्रकार ओस चाटते समय सर्पकी मणिमें, पानी भरनेवाली स्त्रीकी घटमें, गौकी बछड़ेमें, नटनीकी अपने शरीरमें, गर्भवतीकी अपने गर्भमें लौ लगी रहती है! इसी प्रकार मुमुक्षु के वास्ते सब काम करते हुये भी अपना ध्यान हृदय-स्थानमें लगाये रखना असम्भव नहीं। वरञ्च जैसे २ अभ्यास बढ़ता जाता है वैसे वैसे ही सम्भव प्रतीत होने लगता है। तीसरे यत्न सत्कार सेवित अर्थात् भक्ति और श्रद्धापूर्वक होना चाहिये यह बात सब जानते हैं कि संसारमें तबतक कोई काम सिद्ध नहीं होता, जबतक कि वह प्रेमपूर्वक तन मन और धन अर्पण करके न किया जाय। अब विचारका समय है कि मोक्ष जैसी महा पदवी प्रेम और विश्वास बिना कैसे प्राप्त हो सकती है। इसलिये विश्वासे उत्पन्न हुये केवल धर्म भावसे ही नहीं वरञ्च प्रेमभावसे युक्त हो अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि धर्मसे प्रेममें अधिक सामर्थ्य मानी है। जो कार्य धर्मभावसे सिद्ध नहीं होते वे प्रेमभावसे शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं। इसी कारण योगशास्त्रमें इस बातपर बड़ा बल दिया है कि मुमुक्षु में ज्ञान और भक्ति दोनों होनी चाहिये। गुरु परमात्माके तुल्य हैं और उनके नामकी उपासना करना परमात्माकी ही उपासना करना है और गुरु मनुष्य नहीं हैं। कबीर महात्मा कहते हैं—

गुरु को मानस जानते, ते नर कहिये अन्ध।
होंय दुखी संसार में, आगे यम का फन्द॥

महानारायण उपनिषद्में कहा है—मन्त्र परमात्माको कहते हैं, और जब मन्त्रका अर्थ परमात्मा होता है तो सत् चित् आनन्द इन तीनों अक्षरोंसे एक 'ओ३म्' का ध्यान करे तो मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। और भी कहा है कि स्फटिक मणिकी न्याईं शुद्ध प्रकाश, धूएं जैसा श्वेत रक्त वा तारेके समान, वा जुगनू दीवेके समान, स्वर्ण वा नीरलके प्रकाशके समान, अन्तर हृदयाकाशमें प्रतीत होता है। इसी-का नाम प्रणव है यह प्रकाश ही सबसे उत्तम मन्त्र है। और यह मन्त्र न किसी अक्षरसे बना है। इसका अनुभव ऋषि मुनि समाधि-अवस्थामें करते आये हैं। आन्तरीय और वाह्य इन्द्रियों द्वारा नहीं देखा जाता। इस प्रकाशमें जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं और मन बुद्धिका कार्य शिथिल हो जाता है। यह मण्डालोपनिषद्में कहा है परन्तु इस ध्यानमें वैराग्य आवश्यकीय साधन है सो यह वैराग्य दो प्रकारका होता है।

'द्रष्टानुश्राविक विषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्

सर्व वासना वश करनेके अन्तर जो अवस्था लौकिक और पारलौकिक विषयोंसे विरक्त होनेके कारण मुमुक्षु के हृदय-में उत्पन्न होती है उसे वैराग्य कहते हैं। अर्थात् सर्व पदार्थ द्रष्ट और अनुश्राविक भेदसे द्विविध होते हैं। संसारके समस्त

पदार्थों को दृश्य कहते हैं। इसीमें आन्तरिक वासना अर्थात् मान और बड़ाई भी गिने जाते हैं। अनुश्राविक उन विषयोंको कहते हैं जो स्थूल इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जाते हैं। और जिनका वर्णन वेदों और अन्य शास्त्रोंमें पढ़ते हैं, वा गुरुमुख द्वारा सुनते हैं। इसमें स्वर्गादि सुख-ऋद्धि सिद्धिके प्राप्ति के विषय भी गिने जाते हैं। जब मुमुक्ष, उक्त पदार्थों की वासना त्याग यह निश्चय कर लेता है कि अब मैं विषय-वासनाके अधीन नहीं हूं। मेरा आनन्द किसी पदार्थके परायण नहीं है। अर्थात् मैं परतन्त्र नहीं हूं। वरञ्च यह सब मेरे आधीन है। मैं स्वयं स्वतन्त्र हूं। तब वह मुमुक्षु वैरागी कहाने योग्य हैं। यह स्मरण रहे कि विषयोंके त्यागको ही केवल वैराग्य नहीं कहते। इसलिये जो मनुष्य घर बार छोड़ जङ्गलमें जा बैठते हैं और वासनाको नहीं जीतते वह कभी योग-साधनके योग्य नहीं बनते। यथार्थ वैरागी वही हैं जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य और भोगोंके बीचमें रहकर अपनी ममता-को दूर करें। इस प्रकारके वैराग्यको अपरा वैराग्य कहते हैं और जब इसमें वृत्तियोंका निरोध हो जाता है तो मुमुक्षुको अनुभव ज्ञान होने लगता है। और सम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। दूसरे परा वैराग्य।

'तत् परमपुरुषख्याते गुण वै तृष्णयम्'

परा वैराग्य उसे कहते हैं जिसमें मुमुक्षुको पुरुषका ज्ञान हो जानेसे प्रकृतिके गुणोंकी लेशमात्र भी इच्छा नहीं रहती,

अपरा वैराग्यसे प्राप्त होनेवाली सम्प्रज्ञात समाधिमें मुमुक्षुको अस्मद भाव रहता है। परन्तु परा वैराग्यसे प्राप्त होनेवाली असम्प्रज्ञात समाधिमें यह अस्मद भाव भी नहीं रहता। जो प्रकृतिके तत्व गुणकी अति सूक्ष्मावस्था है। और ध्यानी ईश्वरमें ऐसे लीन हो जाते हैं जैसे जलके बूंद समुद्रमें। इस अवस्थामें ध्यान ध्येय और ध्याता एक हो जाते हैं।

धमें मुमुक्षुको
प्राप्त होनेवाली
हीं रहता। जो
ध्यानी ईश्वरमें
इस अवस्थामें

अथ भक्ति मार्गम्

ॐ

इन्दीवरदलश्यामामिन्दिरानन्दकन्दलम् ।
वन्दारुजनमन्दारं वन्देहं यदुनन्दनम् ॥

सच्चिदानन्देश्वराय नमः । सच्चिदानन्द आनन्दकन्द असुरारि वनविहारी भगवान्‌को प्राप्तिके लिये भक्ति ही एक मुख्य साधन मानी गयी है। और सब साधन गौण माने गये हैं। यदि वास्तविक देखा जाय तो यही विदित होता है कि जबतक आत्मा परमात्माके साथ एक न हो जाय अर्थात् जबतक उसकी इच्छाके अधीन न हो जाय तबतक जीवनमें कोई भी आनन्द नहीं। और अपनी वासना स्थूल हो वा सूक्ष्म किंचित् भी नहीं रहनी चाहिये। केवल परमात्माकी इच्छाको परम इच्छा समझकर उसको पालन करना और अपने मिथ्या अहंका उसमें विस्मरण करना ही अन्तिम पद वा मनुष्य-जीवनका मुख्य उद्देश्य है। भगवत्‌को छोड़ किसी वस्तुका आश्रय न लेना किन्तु तन मन प्राण और आत्माको भगवत्‌से उत्पन्न हुए जान और उसीके आधार समझ उसीमें लीन कर देना ही जीवनका लक्ष्य है। कोई कर्म करे वह भगवत् अर्पण हो, ऐसे भक्तियोग द्वारा व्यवहार और परमार्थमें कुछ अन्तर नहीं रहता। वह जीवन-मुक्त हो जाता है। सो उस भक्तिका संक्षेपतः विवरण आप लोगोंके हस्तगत किया जाता है। सच्चे प्रेमसे पढ़ो ॥

बृन्दारण्ये तपनतनयातीरवानीरकुञ्जे,
गुंजन्मंजुभ्रमरपटलीकाकलीकेलिभाजि

आभीराणां मधुरमुरलीनादसम्मोहितानां,
मध्येक्रीडन्नवतु नित्यं नन्दगोपाल बालः ॥

'अथ भक्ति मार्गम्'

'भज्' सेवायां धातुसे 'स्त्रियां क्तिन्' इस सूत्रसे क्तिन् प्रत्यय होता है 'हलन्त्य' इस सूत्रसे नकारकी 'लशक्वतद्धिते' इससे ककारकी इत् संज्ञा हुई 'चोः कुः' करके जकारको गकार और 'खरि च' से ककार करके भक्ति शब्द सिद्ध होता है। भक्ति मार्गका आरम्भ करते हुए नारद भक्ति सूत्रमें भक्तिका स्वरूप इस भांति वर्णन करते हैं। सूत्रः—

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' ॥१॥

भक्तिका अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप है 'मूकास्वादनवत्' ॥२॥ गूंगेके स्वादकी भांति उसका आनन्द वर्णन नहीं किया जा सकता यथा श्रुतिः—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशयन्नात्मनि
यत्सुखं भवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा ततः
स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यतेः ॥

समाधिके द्वारा चित्तके मल छूट जानेपर, परमेश्वरमें चित्तके लग जानेपर जो सुख होता वह वाणीसे कहा नहीं जाता क्योंकि आत्मा उसको स्वयं शुद्धान्तःकरणसे ग्रहण करता है।

सूत्रः-'अमृत स्वरूपा शान्तस्वरूपा च' ॥३॥

और भक्तिका अमृत स्वरूप शान्ति स्वरूप है। पराशरका मत है कि ईश्वर-पूजादिमें अनुराग करना भक्ति है। गर्ग

कहते हैं कथा आदिमें अनुराग होनेका नाम भक्ति है। शाण्डिल्य का मत है कि आत्मामें निरन्तर रति करना भक्ति है। परन्तु नारदजीके मतानुसार ईश्वरमें सब आचारोंका अर्पण कर देना और ईश्वरके स्मरणमें परम व्याकुल होना भक्ति है। यथार्थमें है भी यही; परन्तु इसमें एक आवश्यक अंश और है। और वह यह है कि जिसकी भक्ति की जाय उसके माहात्म्यका ज्ञान रहे। अर्थात् उसकी श्रेष्ठताका सदैव स्मरण रहे कि विना भक्ति एक व्यभिचारीयोंके प्रेमके बराबर है। कर्म ज्ञान और योगसे भक्ति बढ़कर है। क्योंकि कर्मज्ञान और योग तो साधन ही हैं और भक्ति फलस्वरूप है। किसी किसीका मत है कि भक्तिके लिये ज्ञान होना भी आवश्यक है, और भक्ति और ज्ञान एक दूसरेपर अवलम्बित हैं। परन्तु नारदजी ज्ञानको आवश्यक नहीं समझते हैं। क्योंकि भोजनका ज्ञान होनेसे क्षुधा तृप्त नहीं होती। इसी प्रकार ईश्वरका ज्ञान होनेसे भक्ति नहीं हो जाती है। क्योंकि भक्ति हृदयके प्रेमका विषय है और ज्ञान बुद्धिका।

अब भक्ति नौ प्रकारकी बतलाई हैं यथा:—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

१ ईश्वरके गुण और माहात्म्य सुननेकी भक्ति, २ ईश्वरके रूपकी भक्ति, ३ पूजाकी भक्ति, ४ स्मरण करनेकी भक्ति, ५ दास्यभावकी भक्ति, ६ सखाभावकी भक्ति, ७ कान्ताभावकी भक्ति, ८ आत्मनिवेदनकी भक्ति, ९ तन्मयरूपकी भक्ति। और भी कहा हैं:—

श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षदभवद्वैयासकी कीर्त्तने

प्रह्लादः स्मरणे तदंघ्रि भजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येथ सख्येर्जुनः,
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत्कृष्णाप्तिरेषापरा॥

भगवानको श्रवण करनेमें परीक्षित हुआ। वैयासिकी कीर्त्तन-में, प्रह्लाद स्मरण करनेमें, लक्ष्मी भगवानकी सेवामें, पृथु पूजनेमें, अक्रूर वंदना करनेमें, महावीर दासपनेमें, अर्जुन मित्रभावमें और सब कुछ अपना भगवानके अर्पण करनेमें बलि हुआ। गोपियोंकी भगवान श्रीकृष्णचन्द्रमें परमविरहकी भक्ति थी। एक समय श्रीकृष्ण मथुराको जाने लगे तो एक सुकेती नामकी गोपी कहने लगी कि महाराज, मेरे स्थानपर पधारकर मुझे भी कृतार्थ करें। यह सुनकर कभी प्रेममें मग्न हो जायंगे इस भांतिसे बिना मिले ही चले गये। तो सुकेति विरहअग्निसे दग्ध होकर भस्मीभूत हो गई। तो श्रीनन्दनन्दन भक्तवत्सलने भक्तोंको पीड़ाको न सहते हुए सुकेतिकी भस्म राशिके समीप आकर विचार किया कि मेरी प्यारीको भस्मको अंगमें लगाकर गंगामे स्थापित कर देऊँ तो कुछ विरहाग्नि शान्त होवे। यह समझकर प्यारेने भस्मका रूप धारण करके सुकेतिकी भस्म अंगमें लगाकर गंगामें गोता लगाकर आवृत्तिकी तो चार गोपियां इस चरित्रको देखकर कहने लगीं। चन्द्रिका नामकी गोपीने कहा:—

बाग नहीं बाड़ी नहीं नहीं फूल परसंग।
भ्रमर बावरो हो रह्यो भस्म रमावत अंग॥

यह सुनकर सुमति नामकी गोपीने कहा कि:—

कदेक होती केतकी बसतो वाके संग।

भ्रमर बावरो हो रह्यो भस्म रमावत अंग ॥

फिर चन्द्रभागा नाम की गोपीने कहा कि:—

होतो तो रहतो नहीं जरतो वाके संग ।

कपट प्रीतिके कारणे भस्म रमावत अंग ॥

फिर चन्द्रकान्त नामकी गोपीने कहा:—

होतो तो रहतो नहीं जलतो वाके संग ।

प्रीति पुरानी कारने भस्म भुवावत भंग ॥

अतएव गोपियोंकी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जैसी भक्ति थी उस भक्तिके लिये ब्रह्मादिक भी भटकते रहते हैं। कबीर-जीने कहा है:—

'एक गोपी के प्रेम में बह गये कोटि कबीर' भगवान्ने भी कहा है कि 'मुझे न ब्रह्मा न शिव न कोई और देवता प्यारे हैं जैसी कि मुझे व्रजकी गोपी प्यारी हैं । शुकदेव जी कहते हैं।

तासां तपः किं कथयानि राजन्,
पूर्णे परे ब्रह्मणि वासुदेवे ।
याश्चक्रिरे प्रेम हृदिन्द्रियाद्यैः,
विसृज्य लोकं व्यवहार मार्गम् ॥

हे राजन् ! जिन्होंने लोक और व्यवहार-मार्गको छोड़ पूर्ण परब्रह्म वासुदेवमें अपने मन और हृदयको लगा लिया है उनका तप मैं क्या कहूं। उपनिषद् में भी कहा है:—

भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्ष विघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठान्त्सर्वान्परिपालयति ।

भक्तवत्सल स्वयं ही सब मोक्षके विघनोंसे भक्ति निष्ठा-वालोंकी पालना करते हैं 'सर्वानीष्टान्प्रयच्छति' सब अभीष्टों-

को देते हैं 'मोक्षं दापयति' मोक्ष दिलाते हैं 'चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या कल्प कोटिभिर्मोक्षो न विद्यते' चतुर्मुखादि देवताओंकी भी विना विष्णु भक्तिके करोड़ कल्पों-में भी मोक्ष नहीं हो सकती 'कारणेन विना कार्यं नोदेति' कारण के विना कार्य नहीं होता 'भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते' भक्तिके विना ब्रह्मज्ञान भी कदापि नहीं होता 'तस्मा-त्वमपि सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रयः' अतएव तू भी सब उपायोंको परित्याग करके भक्तिका आश्रय कर 'भक्ति निष्ठो भव' भक्तिमें विश्वास कर 'भक्त्या सर्व सिद्धयः सिध्यन्ति' भक्तिसे सारी सिद्धियां सिद्ध होती हैं। भक्त्य-ऽसाध्यं न किंचिदस्ति' भक्तिसे असाध्य किंचित् भी नहीं है। नकुल कहते हैं जो कालरूपी फांसीके बन्धनमें पड़के नरकमें गमन होय और जो कुलहीन पक्षी कीड़ा आदिमें जन्म होय और सैकड़ों कीड़ोंमें भी जाके अन्तरात्माका यही ध्यान करके मांगता हूं कि केशवकी मुख्य भक्ति मेरे हृदयमें होय। अब भक्ति साधन दो प्रकारके हैं। एक त्याग-सम्बन्धी, दूसरे कर्तव्य सम्बन्धी त्याग सम्बन्धी साधनमें पहले इन्द्रियों के विषय और सांसारिक संग त्याग करना अर्थात् सांसारिक चीज़ों से निवृत्ति करना, दूसरे अभिमान और दम्भ आदिको त्याग करना, तीसरे स्त्री धन नास्तिक और वैरियोंके चरित्रको नहीं सुनना, चौथे वादका अवलम्ब नहीं करना, क्योंकि वादसे संशय और बहुल भाव होता है, पांचवें कुसंग सर्वथा छोड़ देना, क्योंकि यह काम क्रोध मोह स्मृतिभ्रंश बुद्धि नाश और सर्व नाश करनेका कारण है बुरे संगसे इनकी तरंगें समुद्र तरंगों-के समान बड़ी हो जाती हैं। कर्त्तव्य-सम्बन्धी साधनमें प्रथम निरन्तर भजन करना दूसरे भगवत्के गुण सुनना और कीर्त्तन

करना, तीसरे महात्माओं का संग जो दुर्लभ अगम्य और सिद्धि दायक है, करना। ऐसा संग ईश्वरकी कृपासे ही प्राप्त होता है। ईश्वर और ऐसे महात्माओंमें कोई भेद नहीं है। इसलिये इनका संग सर्वथा ग्रहण करना चाहिये। चौथे जबतक भक्ति नहीं होय तबतक लोक-व्यवहार करना, परन्तु कर्मोंके फल सर्वथा त्याग करना। पांचवें अपने सब आचारोंको ईश्वरके अर्पण करना और काम क्रोध अभिमान आदि भी उसीके प्रति करना। छठे परम स्वामीभक्त दास, और परम पतिव्रता स्त्री अपने स्वामी और पतिकी सेवा करते हैं वैसे ही ईश्वरके भक्तको ईश्वरका भजन करना चाहिये; सातवें सुख दुःख इच्छा लाभ आदिको छोड़कर, और कालकी प्रतीक्षा करते हुए भक्तको चाहिये कि आधा क्षण भी व्यर्थ नहीं खोवे; आठवें अहिंसा सत्य शौच दया आस्तिकता आदिका पालन करना; नवें सर्वदा सब भावोंसे निश्चिन्त हो केवल भगवान्का ही भजन करना; दसवें सारांश यह है कि भक्ति महात्माओंकी कृपा अथवा ईश्वर कृपांशसे प्राप्त होती है। ईश्वरकी जिसपर कृपा होती है उसी भक्तके हृदयमें वह प्रकाशमान होती है यथा :—

सूत्रः 'प्रकाश्यते कापि पात्रे यथा ब्रजगोपिका नाम् ॥ ४ ॥

यह भक्ति किसी २ पात्रमें प्रकाशमान होती है, जैसे ब्रजकी गोपियों में 'नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियाभेदः' ॥५॥ उस भक्तिके प्राप्त होनेमें जाति विद्या रूप कुल धन और क्रिया का भेद नहीं है जैसा कि :—

व्याधस्या चरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्यका,
कुब्जायाःकिमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नोधनम्

वंशः को विदुरस्य यादव पते रुग्रस्य किं पौरुषम्,
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणै र्भक्ति प्रियो माधवः

यदि कोई कहै कि भगवान् आचरणसे प्रसन्न होते हैं तो व्याधका क्या आचरण था? जो भगवान् बड़ी आयुवाले से प्रसन्न होवें तो ध्रुवकी क्या आयु थी? जो भगवान् विद्या-से प्रसन्न होवें तो गजेन्द्रको क्या विद्या थी? जो भगवान् अधिकरूपवालेसे प्रसन्न होवें तो कुब्जाके क्या रूप था? जो भगवान् अधिक धनवालेसे प्रसन्न होवें तो सुदामाके कहां धन था? जो भगवान् उत्तमकुलवालेसे प्रसन्न होवें तो विदुरका क्या वंश था? जो भगवान् अधिक पुरुषार्थसे प्रसन्न होवें तो उग्रसेनका क्या पुरुषार्थ था? भगवान् तो केवल भक्ति-से प्रसन्न होते हैं न कि गुणोंसे, क्योंकि भगवान्को भक्ति ही प्रिय है शबरी अपने मनमें यह विश्वास करके कि भगवान् मेरे घरपर अवश्य पधारकर दर्शन देंगे वह नित्यप्रति भगवान्के लिये मीठे २ बेर चखकर रखती जाती थी। उसकी भक्ति और प्रेमसे खिंचकर भगवान्ने उसको दर्शन दिये और जात पांत-का विचार न करके भक्तिसे अर्पण किये हुए जूठे बैरोंको बहुत प्रसन्न होकर स्वीकार किया, क्योंकि भगवान् तो केवल भक्तिसे प्रसन्न होते हैं। भगवान् भी कहते हैं।

अपि चेत्सु दुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः॥

अत्यन्त दुराचारी भी एक निश्चयसे मेरा भजन करेगा तो उसे भी निश्चित साधु ही समझना चाहिये क्योंकि उसका निश्चय अच्छा है :—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपिस्युःपापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्या स्तथा शूद्राः तेपि यान्ति परा गतिम्

जो पाप योनियां हैं वह भी मेरा आश्रय करें तो वह भी परम पद मोक्षको प्राप्त होवें उसी प्रकार स्त्री, वैश्य, शूद्र कोई भी मुझको आश्रय करके संसृतिचक्रमें नहीं पड़ता प्रत्यु परम-पदको प्राप्त होता है और भी कहा है:—

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रःकरुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखः क्षमी ॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः ।
मय्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥

सब भूतोंमें द्वेषरहित, सुख दुःखमें, समान चित्त वाला, क्षमावान् और सदैव सन्तोषी, स्थिर चित्त और मनका संयमी और जिसका दृढ़ निश्चय है और जिसने अपना मन बुद्धि मुझको अर्पण कर दिया है ऐसा जो मेरा भक्त है वह मुझे प्रिय है:—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरुः ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः ॥

मेरे मनवाला हो, मेरा भक्त बन मुझको नमस्कार कर, मुझको ही प्राप्त हो जावेगा इस प्रकार अपने आपको मेरे परायण कर। यही भक्ति है और भी कहा है:—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्म पत्र मिवाम्भसा ॥

जो पुरुष कर्मफलकी कामना छोड़ कर्मोंको ब्रह्मके अर्पण करता है वह पापसे इस प्रकार लिप्त नहीं होता जैसे पानीसे कमलका पत्र लिपायमान नहीं होता। नारद सूत्रमें कहा है :—

सूत्रः—'तदर्पिता अखिलाचारता।
तद्विस्मरणे परं व्याकुलता' ॥ ७ ॥

अपने सम्पूर्ण कर्मोंको उस परमात्माके अर्पण कर देवे और उसके विस्मरणमें परम व्याकुलता होवे तो जानो कि भक्ति-का समुद्र मेरे भीतर उमंग रहा है।

सूत्रः—'सतु कर्म ज्ञानेभ्योप्यधिक तरः' ॥ ८ ॥

यह भक्ति कर्म ज्ञान योगसे भी अधिकतर है।

सूत्रः—'पुनन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥ ९ ॥

भक्त अपने कुल और सम्पूर्ण पृथिवीको पवित्र करता है सर्व सांसारिक वासनाओंका त्याग, विशेषकर कामका त्याग करना और भगवत् चरणोंमें अतिशय गाढ़ प्रेम, अपनी सर्व वासनाओंके ऊपर भगवत इच्छाका अधिकार स्थापित करना अर्थात् जितनी वासना फुरें सर्व भगवत् इच्छासे प्रेरित हों वा भगवत् इच्छाको पूर्ण करनेवाली हों और उसके विरुद्ध कोई वासना न फुरने पावे, हृदयमें भगवत्-प्रेमकी अजस्र धारा ऐसी निरन्तर बहती रहे जैसे गङ्गाका प्रवाह, कभी एक क्षण भी हृदय भगवत्-प्रेमसे शून्य न रहे और जैसे मीनके लिये जल ही जीवन होता है वैसे ही भक्ति मार्गपर चलनेवालेके लिये भगवत्-प्रेम ही जीवन होता है। श्रोत्रसे भगवत्के गुण श्रवण करना, जिह्वासे उनके गुण-कीर्त्तन करना, हस्तोंसे पूजा और सेवा करनी, पगों-

से उनके कार्य पूर्ण करनेके निमित्त चलना वा महात्माओंके दर्शन तीर्थ इत्यादि स्थानोंको जाना, मुखसे नाम उच्चारण करना तथा भगवत्-कथाका पाठ करना, नासिकासे, भगवतच्चरणोंसे स्पर्श हुए पुष्पोंकी सुगन्धि लेनी इत्यादि सर्वांगोंको भगवत्के अर्पण करना ही जीवनका मुख्योद्देश्य है। मनसे स्वरूपका चिन्तन करना, बुद्धिसे ध्यान और चित्तसे स्मरण और अहंकारसे भगवत्पर अपना मान करना इस प्रकार आत्मासे आत्म-निवेदन सर्व भगवत् समर्पण करना ही जीवनका आधार है। सर्वत्र ही भगवत्के लिए व्याकुल होना भक्तिका मुख्य साधन माना गया है। पद्मपुराणमें अपनी भक्तिसे अपने भक्तोंकी भक्ति को भगवान् उत्तम बतलाते हैं :—

मम भक्ताःहिये पार्थ न मे भक्तास्तु मे मताः।
मद्भक्तस्यतु ये भक्तास्ते मे भक्ततमाः मताः॥

हे पार्थ जो मेरे भक्त हैं वह भक्त नहीं किन्तु जो मेरे भक्तोंके भक्त हैं। वे मेरे मतमें श्रेष्ठ हैं तुलसीदासजी भी कहते हैं:—

चौ० मेरे मन प्रभु अस विस्वासा। राम ते अधिक रामके दासा॥

भगवान् अपने भक्तोंके लिए अपने प्रणको छोड़ भक्तोंका प्रण पालते हैं। जिस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा छोड़ भीष्मजीकी प्रतिज्ञा पूरी करी इससे परमभक्त भीष्म पितामह पूरा विश्वास कर ये शब्द कहते हैं:—

आज जो मैं हरि है शस्त्र न गहाऊं॥ टेक॥
तो लाजूं गंगा जननीको शन्तनु सुत न कहाऊं॥१॥
सिन्दन खण्ड सारथिय खण्डों कपि ध्वज सहित गिराऊं॥२॥
पाण्डव दल सन्मुख ह्वै धाऊं सरिता रुधिर बहाऊं॥३॥
इतनो न करूं शपथ मोय हरिकी क्षत्री गति नहीं पाऊं॥४॥

सूरदास रण भूमि विजय बिन जीवत न पीठ दिखाऊं ॥ ५॥

इसी प्रकार सच्चिदानन्द श्रीपुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीता सहित नदी तटपर पहुंच कर केवटको नौका लानेकी आज्ञा दी तो केवट भगवान्का परमभक्त उनकी आज्ञानुसार नौका लाकर उपस्थित हुआ और प्रेमपूर्वक बोला, महाराज अपने चरणोंको प्रथम धुलवाकर नौकापर आरूढ़ हूजिये क्योंकि आपके चरणोंकी रजसे पाषाणकी शिला बनी हुई स्वर्गको चली गई ऐसे ही मेरी नौका चली गई तो मेरा निर्वाह किस प्रकार होगा और मैं अपने कुटुम्ब सहित आपके चरणामृतको पान तो करूंगा तो हमारा स्वर्गमें वास होगा। तो भगवान्ने अपने भक्तकी विनय सुनकर वैसा ही किया। जब पार उतरकर उसको उतराई देने लगे तो उसने निम्नलिखित प्रेम भरे शब्द कहे:—

अहं तु नद्याः पर पार कर्त्ता,
त्वं वै भवाब्धेः परपारकर्त्ता।
न नाविकां नाविक एव कर्म,
मौल्यं लभेत्तर्हि कथं तदेमि ॥ १ ॥

हे महाराज! मैं इस नदीसे पार उतारनेवाला हूं और तुम संसारसे पार उतारनेवाले हो। इससे दोनों मल्लाह ठहरे नाविकसे नाविक उतराई नहीं लेता है सो मैं यह अनरीत कैसे करूं।

त्वत्तो न गृह्णामि यथाह मेद्यः
ग्राह्यं तथा वै भवता न तत्र।

इत्थं प्रकारेण मया त्वया च,
धर्म व्यवस्था परिपालनीया ॥२॥

आज मैं जैसे तुमसे उतराई नहीं लेता हूं इसी प्रकार जब मैं कुटुम्ब सहित आपके घाटपर आऊं तब मुझसे आप उतराई न लें इस प्रकार मुझको तुमको धर्मकी व्यवस्था पालन करनी चाहिये। यही भाव हिन्दीमें भी एक महात्माने कहा है:—

सवैया

जात पात न्यारी करी हमरी तुम्हारी नाथ केवटके कर्म एक नीके कै निहारिये। तुम तो उतारो भव सागर परमारथ सरिता उतार हम कुटुम्ब गुजारिये॥ नाई ते न नाई लेत धोबी न धुलाई लेत देके उतराई मोहू जात न बिगारिये। पेशा अधमाई जान आपको उतार दीनो थारे घाट आये नाथ मोहूको उतारिये॥

इसी प्रकार जब भगवान् शिवरीके यहां गये तो जातपातका कुछ ख्याल न करके केवल भक्तिका गाढ़ नाता माना जैसा कि अध्यात्म रामायणमें लिखा है:—

पुंसत्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जाति नाम्राश्रमोद्भवः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेवहि कारणम्॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैव द्रष्टुमहं शक्तो मद्भक्ति विमुखैः सदा॥

रामजी कहते हैं कि पुरुष, स्त्री जाति और आश्रम यह मेरे भजनमें कोई कारण नहीं केवल भक्ति ही कारण है और जो

मेरी भक्तिसे विमुख हैं वे यज्ञ दान तप और वेदाध्ययनादि कर्मों को करके मुझे कभी नहीं देख सकते। इस कलिकालमें तो मनुष्य केवल भगवान्‌की भक्तिसे ही संसार-सागरसे पार हो सकता है। एक समय नारदजीने भगवान्‌के पास जाकर पूछा कि भगवन् इस कलिकालमें मनुष्य इस अपार संसारसे किस प्रकार पार हो सकता है तो भगवान्‌ने कहा कि कलियुगमें तो केवल भक्ति ही से मनुष्य पार हो सकता है क्योंकि कहा है कि 'कलौतु केवला भक्तिः' इस शास्त्रके प्रमाणसे कलियुगमें भगवानकी भक्ति ही इस संसार-सागरसे पार उतार सकती है। कर्म काण्ड और ज्ञानकाण्डमें भक्तिके बिना श्रम करना वृथा ही है। उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता जैसा भागवत्‌के दशम स्कन्धमें ब्रह्माजी कहते हैं।

श्रेयस्करां भक्तिमुदस्यते विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषा मसौ क्लेशल एव शिष्यते,
नान्यद्यथा स्थूल तुषावघातिनाम्॥

हे विभो! जो आपकी कल्याणकारी भक्तिको छोड़कर ज्ञानप्राप्तिके लिये अन्यत्र क्लेश उठाते फिरते हैं, उनको चावलोंके तुषको कूटनेपर जिस प्रकार क्लेशके सिवा कुछ नहीं मिलता, इसी प्रकार उनको भी दुःखके सिवा कुछ नहीं मिलता विदुरने कहा है 'हरिका नाम ही मेरा जीवन है' कलियुगमें और प्रकारसे गति नहीं है, जो भगवान्‌की भक्ति करते हैं भगवान् उसकी सब प्रकारसे रक्षा करते हैं क्योंकि त्रिलोकीकी रक्षाकी चिन्ता रघुनाथजीको है। कहा भी है:—

यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकै-
र्हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्याह्यहं राघवः ॥
सद्यास्ते भुवनावली परिवृता द्वीपैः समं सप्तभिः,
स श्रेयो विदधातु नस्त्रिभुवनस्त्राणैकचिन्तापरः ।

अहर्निश जो रघुनाथजीको भजते हैं उन्हींकी विपत्ति दूर होती है। जिस समय रावण सीताको हरकर विकट भूमिमें ले गया जहां मनुष्यकी गति नहीं; क्षणमें सृष्टिका संहार करने-वाले जो रघुनाथ हैं वह रावणको क्यों नहीं मारते कि राम-चन्द्रजीने विचारा कि सीता रावणके हृदयमें अहर्निश वास करती है और उसके हृदयमें मैं निवास करता हूं और मैं भक्तों-के हृदयमें निवास करता हूं तो कभी भक्तोंको कष्ट न पहुंचे, वे तो त्रिलोककी रक्षाकी चिन्तामें लग रहे हैं तो भक्तोंको क्लेश क्यों होगा उनकी रक्षा तो भगवान सर्वदा सब कालमें करते हैं अतएव जो ध्यानमें नहीं आते और प्रकट नहीं और जिनका अन्त नहीं तथा अविनाशी समर्थ तथा सर्वव्यापी और तीनों लोकके विस्तारके विचारनेवाले तथा महात्माओंकी गति ऐसे जो प्रभु हरि हैं तिनकी शरणमें होना चाहिये। भक्त शिरोमणि जो प्रह्लादजी हुए हैं उनके पिताने राज्य-कार्यकी शिक्षाके लिये ब्राह्मण नियुक्त करके कहा—हे विद्वान्! हमारे पुत्रको राज्य-कार्यकी शिक्षा देवो। यह श्रवण करके विद्वान् उपदेश करने लगा परन्तु भक्त शिरोमणि प्रह्लादजीने राम नामको छोड़कर और कुछ ग्रहण न किया। देखा कि प्रह्लादजीने कैसे कैसे संकट भोगे। निर्दयी पिताने भक्त प्रह्लादजीको कभी तो बड़े विकट पहाड़से गिरा दिया, कभी विष खानेको दे दिया, कभी बड़े

घोर वनमें सिंह व्याघ्रोंके अगाड़ी गिरा दिया, कभी शस्त्रोंका प्रहार किया, तिसपर भी प्रह्लादजी बड़े बड़े क्लेशोंको भी सहन करके परमात्माको भजते ही रहे और मातासे कहा:—

जननी विष मोहि दे पिलाय अब और कुछ तो नहीं उपाय ॥
मेरे आप हरी करले सहाय इक बांह पकरके खैंच लाय ॥
मोहि गिरि पर्वतसे दियो गिराय तहां आप हरिने मोहि लियो उठाय ॥ इक जलतो अग्निमें दिया बिठाय तहँ कूद परे हरि आप धाय । मोहि अमृत हृदयसे लियो लगाय, हरिकी गति मोपै लखी न जाय मेरे रोम रोममें रह्यो समाय ।

और भी प्रह्लादजीने कहा है:—

नाथ योनिसहस्त्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥

हे नाथ जिन हजारों योनियोंमें मैं जाऊं अर्थात् जन्म लूं हे अच्युत, उन उनमें तुम्हारे विषयमें अचल भक्ति होय, जो मनुष्य भगवानको किसी भी नामसे स्मरण करता है वह नरकसे इस प्रकार निकल जाता है जैसे जलको फोड़कर कमल। कृष्ण भगवान भी कहते हैं:—

नित्यं वदामि मनुजाः स्वयमूर्ध्ववाहु,-
र्यो मां मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति ।
जीवो जपत्य नुदिनं मरणे रणे वा,
पाषाण काष्ठसदृशाय ददाम्य भीष्टम् ॥

हे मनुष्यो ! मैं भुजा उठाकर सदा कहता हूं कि जो मरणमें वा रणमें मुकुन्द नरसिंह जनार्दन ऐसे प्रतिदिन मुझे जपता है वह चाहे पाषाण और काष्ठके सदृश भी क्यों न हो, तो भी उसको वांछित फल अर्थात् मुक्ति देता हूं इससे सर्वदा भगवान्-का ही भजन करना चाहिये। अपने सारे कर्म उन्हींके अर्पण समझना चाहिये यथा:—

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्रा विरचना,
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमण मदनान्याहुतिविधिः।
प्रणामः संवेशः सकल मिदमात्मार्पण विधौ,
सपर्या पर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥१॥
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराःप्राणाःशरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधि स्थितिः,
संचारःपदयोःप्रदक्षिण विधिः स्त्रोत्राणिसर्वा गिरो
यद्यत्कर्मकरोमि तत्तदखिलंशम्भो स्तवाराधनम् ।२

और जो मनुष्य अपने किये कर्मोंमें अहं भाव समझता है अपनी प्रत्येक क्रियाको भगवत्के अर्पण नहीं समझता और जो इस पृथ्वीपर भगवद्भक्तिसे शून्य अपने जीवनको बिताता है उनका जीना पृथ्वीपर भार रूप ही है। शेष भगवान कहते हैं:—

न भूम्याःपर्वतो भारो न मे भारो वनस्पतेः।
विष्णु भक्ति विहीनस्य तस्य भारो सदा मम ॥

मुझे भूमिका भार है न पर्वतोंका न वनस्पतियोंका किन्तु जो विष्णु भक्तिसे विहीन हैं उनका भार सदा मेरे ऊपर है। किसी कविने कहा है :—

राज वृथा गज राज वृथा वनिता जो वृथा महिं तरुन समाते।
गर्व वृथा गुण सर्व वृथा अरु द्रव्य वृथा जो चले न चलाते॥
यार वृथा परिवार वृथा संसार वृथा गुरु नित्य चिताते।
एक रकार मकार बिना धिक्कार सभी चतुराईकी बातें॥ १॥
चारों हीं वेद पुराण अठारहों चौंसठ तन्त्रको मन्त्र बिचारे।
तीन सौ साठ महा मन्त्र संयम मंगल यज्ञ पुरी पुर सारे॥
योग वियोग प्रयोग उपासन मैं हरि व्रत सभी निरधारे।
तीनही लोकनके सगरे फल मैं हरि नामके ऊपर वारे॥२॥
काहेको वेद्य बुलावत हो मोहि रोग लगा जिन नारी गहोरे।
वह मधुआ मधुरी मुसकान निहारे बिना कहो कैसे जियोरे॥
चन्दन लाय कपूर मिलाय गुलाब छिपाय दुराय धरोरे।
और इलाज कछू न बने ब्रजराज मिले सो इलाज करोरे॥३॥

अतएव हम सबको भगवद्भक्तिमें ही अपना जीवन बिताना चाहिये। यही मनुष्य जीवनका मुख्योद्देश्य है भगवान् अपने कल्याणकारी वचनोंसे किस प्रकार अपने भक्तोंका कल्याण करते हैं यथा:—

कृष्ण त्वं पठ किं पठामि ननुरे शास्त्रं किमु ज्ञायते
तत्वं कस्यविभोःसकस्त्रिभुवनाधीशश्चतेनापिकिम्
ज्ञानं भक्तिरथो विरक्तिरनया किं मुक्तिरेवास्तुते
दध्यादोनि भजामि मातुरुदितं वाक्यं हरेःपातुवः

रे लाला कृष्ण ! क्यों री माता ! लाला पढ़। क्या पढ़ूंरी ? प्यारे शास्त्र ! हे माता ! शास्त्र पढ़नेसे क्या होगा ? पुत्रतत्व जाना जायगा। किसका ? परमात्माका। हे माता ! परमात्मा कौन हैं ? लालवा ! त्रिलोकके नाथ। हे माता ! उससे क्या होगा ? ज्ञान और भक्ति। भक्तिसे क्या होगा ? हे पुत्र मुक्ति। वह तो तुझे मिलेगी मैया ! ऐसे झगड़ झगड़ोंसे मुझे क्या मिले ? मैं तो दधि चूड़ा खानेको लेऊंगा। भगवान्के यह वाक्य हमको पवित्र करें। और भी कहा है:—

अभिनवनवनीतस्निग्ध मापीत दुग्धं,
दधिकणपरिदिग्धंमुग्धमंगं मुरारेः।
दिशतु भुवनकृच्छ्रच्छेदिता पिच्छगुच्छच्छ-
विनव शिखि पिच्छैः लाञ्छितं वाञ्छितं नः॥

नवीन घृतके खायवेसे दुग्धसे संचित दधिसेयुक्त भगवान्का अंग और भुवनके क्लेशको दूर करनेवाला तमालकेसे गुच्छोंका सा जिनका श्याम वर्ण, नवीन मयूरकी पंखोंका जिनका चिह्न ऐसे त्रिलोकीनाथ अपने लोगोंको वांछित फल देवें।

मैं आनन्द-सागर व्रज नागर, नटवर निरञ्जनकी पीतपट झटपट यमुनाके तटके निकट पकरके कदम्बकी छटाको बढ़ाने-वालेको, चन्द्रको चमत्कारीकी चिन्ताका चातक वर्षा कालकी बाट देखनेवाला पुष्पकौणसे शिलाको भेदनेकी इच्छावाला समुद्रको छोटी नौकासे तैरनेकी इच्छावाला आनन्दकंद हरिके चरण पुञ्जको कोटिशः प्रणाम करता हूं।

बोलो नटवर गिरधारीकी जय !

ओ३म् तत् सत्

अथ ब्रह्म चिन्तनम्

गमागमास्थं गमनादि शून्यं चिद्रूपदीपं तिमिरान्धनाशम्। पश्यामि तं सर्व जनान्तरस्थं नमामि हंसं परमात्मरूपम्॥

हंसो गणेशो विधिरेव हंसो,
हंसो हरिर्हंसमयश्च शम्भुः।
हंसोऽहं जीवः परमात्म हंसो,
हंसोऽयमात्मा गुरु देव हंसः॥१॥

स्वराज्य साम्राज्य विभूतिरेषा,
भवत्कृपा श्री महिमः प्रसादात्।
प्राप्ता मया श्री गुरुवे महात्मने,
नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमोऽस्तु॥ २॥

सर्वाधारं सर्व वस्तु प्रकाशं,
सर्वाकारं सर्वगं सर्व शून्यम्।
नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं,
ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि॥ ३॥

नारायणोऽहं नरकान्तकोऽहं,
पुरान्तकोऽहं पुरुषोऽहमीशः ।
अखण्डबोधोऽहमशेषसाक्षी
निरीश्वरोऽहं निरहंच निर्ममः ॥ ४ ॥
आकाश वल्लेप विदूरगोऽहं,
आदित्य वद्भास्य विलक्षणोऽहम् ॥
आहार्य्य वन्नित्य विनिश्चलोऽहं,
अम्भोधिवत्पारविवर्जितोऽहम् ॥ ५ ॥
नित्योदितं विमल माद्यमनन्त रूपं,
ब्रह्माऽस्मि नेतरकला कलनं हि किञ्चित् ।
इत्येव भावय निरञ्जनता मुपेतो,
निर्वाण मेहि सकलामलशान्तवृत्तिः ॥ ६ ॥
गमागमस्थं गमनादिशून्यं,
ओंकारमेकं रवि कोटिदीप्तिम् ।
पश्यन्ति ये सर्व जनान् तरस्थं,
हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति ॥ ७ ॥
निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः ।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मिनिर्मलः ॥

नित्यः शुद्ध विशुद्धैक मखण्डानन्द मद्वयम् ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परब्रह्माहमेव तत् ॥ ९ ॥
नित्योहं निरवद्योहं निष्क्रियोऽस्मि निरंजनः ।
निर्मलो निर्विकल्पोहं निराख्यातोऽस्मि निर्मलः ॥
पुरुषः परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् ॥ ११ ॥
परावरोस्म्यहं प्राज्ञः प्रपंचोपशमोऽस्म्यहम्
प्रज्ञातोहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः ।
एकधा चिन्त्य मानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः ॥१२॥
सच्चिदानन्दपूर्णात्मा सर्व प्रेमास्पदोस्म्यहम् ।
सच्चिदानन्द मात्रोऽहं स्वप्रकाशोस्मि चिद्घनः
अहं ब्रह्म चिदाकाशं नित्यं ब्रह्म निरंजनम् ।
शुद्धं बुद्धं सदा मुक्तमनामकमरूपकम् ॥ १४ ॥
सर्व प्रकाश रूपोऽहं परावरसुखोऽस्म्यहम् ।
सत्तामात्रस्वरूपोऽहं शुद्धमोक्षस्वरूवान् ॥ १५ ॥
निर्गुणः केवलात्मास्मि निराकारोस्म्यहं सदा ।
केवलं ब्रह्ममात्रोस्मि ह्यजरो ह्यमरोस्म्यहम् ॥१६॥
मुक्तोऽहं मोक्ष रूपोऽहं निर्वाणसुखरूपवान् ।
तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः ॥१७॥

अहमेव हरिः साक्षा दहमेव सदाशिवः।
सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव चेतनम् ॥ १८ ॥
ब्रह्म मात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम्।
अहमेव गुणातीतः अहमेव परात्परः ॥ १९ ॥
ब्रह्मैवाहं न जीवोऽहं ब्रह्मैवाहं न भेदभूः।
ब्रह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः ॥२०॥
चैतन्यमात्रमोङ्कारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम्।
अहमेव जगत्सर्वं अहमेव परं पदम् ॥ २ ॥
बुद्धोऽहं भूत पालोऽहं भारूपो भगवानहम्।
महादेवो महानस्मि महाज्ञेयो महेश्वरः ॥ २२ ॥
चिदक्षरोऽहं सत्योहं वासुदेवोऽजरोऽमरः।
अहमेव गुणातीतः अहमेव परात्परः ॥ २३ ॥
केवलं शान्त रूपोऽहं केवलं चिन्मयोस्म्यहम्।
केवलं नित्य रूपोऽहं केवलं शाश्वतोस्म्यहम् ।२४।
आनन्द रूपोऽहमखण्ड बोधः
परात्परोऽहं घनचित्प्रकाशः
चिद्रूपमेव प्रतिभानयुक्तं
तस्मादखण्डं मम रूपमेतत् ॥ २५ ॥

मैं कौन हूं ? मैं जीव नहीं, किन्तु आत्मा हूं। मेरा संसारसे कुछ सम्बन्ध नहीं। मुझको पूछनेवाला एक परम पुरुष है। मैं परब्रह्म परमात्माका अंश हूं। उसके और मेरे अस्तित्वमें कुछ भी भेद नहीं है। मैं सर्वत्र प्रकाशमान परिपूर्ण हूं। मैं सबका उत्पादक परिपालक और संहारक हूं। जलाशयके जलमें, अंजलीके जलमें, सीमा व्यतिरिक्त तत्व स्वभाव गुण शक्तिमें कुछ भी भिन्नता नहीं। मैं अपने जीवन पोषक द्रव्यका नियमित आकर्षण करता हूं, जिससे मेरा शरीर और मानसिक बल खूब बढ़ रहा है। मुझमें सुख शान्तिका खूब भान हो रहा है। मैं अपने मानस-स्वरूपका ईश्वरके रूपमें रूपान्तर कर रहा हूं। अतएव मैं प्राणीमात्रको उदार भावसे देखता हूं। मैं सर्वत्र प्रकाशको देख रहा हूं। मैं स्वयं प्रसन्न रहकर सबको प्रसन्न कर रहा हूं। मैं नित्य हूं, आत्माराम हूं, सुखमय हूं, अनिर्वेद हूं, उत्साहपूर्ण हूं, उन्नत हूं, सबको उन्नत कर रहा हूं। प्रेम कर रहा हूं। आनन्द मङ्गलकर रहा हूं। ईश्वरका भान करा रहा हूं। स्वयं आनन्दित रहकर सबको आनन्दित कर रहा हूं। प्रेम, पूजा, भक्ति बढ़ा रहा हूं। शुभप्रेरणा शुभाशीष मुझमें स्फुरण पाकर समानाकर्षण पद्धति द्वारा मुझमें विशेष संचित होते हैं, संचालित होते हैं, सम्यक् प्रवाहित होते हैं। मैं अत्यन्त शुद्धाचरणों और पवित्रताको अनुभव कर रहा हूं। मेरे भीतरसे पवित्रतायें और भलाइयां बह रही हैं। प्रकाशका रूप धारणकर सबको प्रकाशित कर रही हैं। मैं सच्चिदानन्द स्वरूपका अपने निज रूपका निज रूपमें सम्मेलन कर रहा हूं। मेरा जठर बलवान, उसकी क्रिया बलवान, परिणाम बलवान, भोजनका परिपाक रक्ताभिसरण संचार हो रहा है। मेरे शरीरपर किसी रोगका

आक्रमण नहीं होता। मैं कभी वृद्ध नहीं होता हूं। मेरे शरीरमें कभी आलस्य नहीं आता, कभी उदासीनता नहीं छाती, मैं सत्य सङ्कल्प और सत्यान्वित हूं, अजर हूं, अमर हूं, मैं बलवान, निरामय, दृढ़ आग्रही, कार्य तत्पर हूं। सदा निर्भय, निःशङ्क हूं। शान्तिपूर्वक सुन्दर विचार करता हूं। विचारोंके सुन्दर चित्र बनाता हूं। उनको चित्रावली बनाके अपनी वित्तभित्ति-पर लटकाता हूं। चित्र मुझमें अन्तर्हित होते हैं। विचारोंके चित्रोंमें कल्पनाके चित्र विचित्र रङ्ग भरे हुए हैं। उनमें प्रेम सम्वेदन, कोपका निर्वेदन, मधुरताका द्योतन भरा हुआ है। चित्रोंमें अनेक भावनाओंकी रेखायें अङ्कित होती हैं, विराम पाती हैं, विलीन होती हैं। विचार चित्र मुझे मोहित कर रहे हैं। मुग्ध कर रहे हैं, स्तम्भित कर रहे हैं। विचारके चित्रोंमेंसे अग्नि, वायु, आकाशका रूप प्रकट हो रहा है। विद्युत्की धारा बह रही है। विद्युत्कण चमक रहे हैं। मेरे रोम रोममें रक्तके कण कणमें उनका भान हो रहा है। मेरी सत्ता अमोघ है, मेरी आज्ञा अनुल्लङ्घ्य है, मेरा निश्चय दृढ़ है, मेरी आज्ञा प्रबल है। मेरी प्रतिभा अद्भुत है। मेरी कल्पना विचित्र है। मेरा स्वभाव स्वतन्त्र है। मेरा हृदय पवित्र है, मेरा जीवन सुखमय है। मेरा व्यवहार सत्य है, विजयलक्ष्मी, जयपताका, धन, समृद्धि मेरी दासी है। परिश्रम, प्रयत्न, उद्योग, यह यह मेरे दास हैं। सुख, शान्ति, आनन्द, उत्साह, आरोग्य, वैभव-पर मेरा अधिकार है। मैं सबका चालक, द्योतक, पालक हूं। मेरे अतिरिक्त परमाणु नहीं। मैं परमाणुके अतिरिक्त नहीं। मैं सबका सम्राट्, महाराजा धनी, सबका मालिक हूं। मुझमें ईश्वर है, मैं ईश्वरमें हूं। ईश्वर और मैं अभिन्न हूं। कर्त्तमकर्त्तु-मन्यथा, कर्त्ता शक्तिमान हूं, सबका प्रेरक भारवाहक संरक्षक

हूं। मेरी आज्ञामें पंच भूत हैं। मेरी आज्ञामें चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र तारे हैं—

मयि अखंड सुखाम्भोधौ बहुधा विश्व वीचयः।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया मारुत विभ्रमात्॥

सब सङ्कल्पका ही आविष्कार है। जैसे सङ्कल्प किये जाते हैं वैसा ही उनका मूर्त्त स्वरूप बनकर जगत्की स्थिति होती है। संकल्प ही जगत् है। जैसा पुरुष संकल्प करता है वैसा ही वह स्वयं हो जाता है यथा :—

सति सक्त नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते॥

जैसे भ्रमरिका ध्यान करता कीट भ्रमरत्वको प्राप्त होता है वैसे ही एक निष्ठासे ब्रह्मका ध्यान करता पुरुष ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है। अतएव हम सबको सावधान होकर बार बार ब्रह्म ही चिन्तन करना चाहिये। एक महात्माने कहा है:—

सवैया

जो मन नारीकी ओर निहारत तो मन होत है ताहिको रूपा।
जो मन काहूसे क्रोध करे, तब क्रोध मयी हो जाय तद्रूपा॥
जो मन माया ही माया रटे नित, तो मन डूबत मायाके कूपा।
सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

जो मनुष्य श्रद्धा भक्तिसे नित्यप्रति इसका पाठ करेगा वह पाप पुण्यसे इस प्रकार लिप्यमान नहीं हो सकता जैसे कमलका पत्र जलसे और वह स्वयं ब्रह्मरूप ही हो जायगा।

॥ ओं इति ब्रह्म चिन्तनम् ॥

ग़ज़ल

जङ्गलमें जोगी बसता है, गाहे हंसता है गाहे रोता है।
दिल उसका कहीं न फंसता है, तन मन में चैन बरसता है॥
खुश फिरता नंगम नंगा है, नयनोंमें बहती गङ्गा है।
जो आजावे सो चङ्गा है, मुख रङ्ग भरा मन रङ्गा है॥
गाता मौला मतवाला है, जब देखो भोला भाला है।
मन मणिका उसकी माला है, तन उसका एक शिवाला है॥
नहीं चरचा मरने जीने की, है याद न खाने पीने की।
कुछ दिन की सुध न महीने की, है पवन रुमाल पसीने की॥
पास इसके पक्षी आते हैं, दरया गीत सुनाते हैं।
बादल स्नान कराते हैं, वृक्ष उसके रिश्ते नाते हैं॥

ग़ज़ल

अगर है शौक़ मिलने का, तो हरदम लौ लगाता जा।
न रख रोजा न मर भूखा, न जा मसजिद न कर सिजदा॥
बज़ू का तोड़ दे कूजा, शराबे शौक़ पीता जा॥ १॥
फेंक तसबी तोड़ धागा, किताबां डाल पानी में।
मशायक बन के बैठा रह, मशीयत को सिखाता जा॥ २॥
इशक की पकड़ कर झाड़ू, सफा कर दिल के हुजरेको।
दुई की धूर को ले कर, मुसल्लम पर उड़ाता जा॥ ३॥
कहे मंसूर सुन क़ाज़ी, निवाला क़ाफ़र का मत खा।
अनलहक को सभी जाने, यही कलमा पढ़ाता जा॥ ४॥

भगवद्भक्ति आश्रम,
रामपुरा।

यह आश्रम रेवाड़ी जंकशनसे पश्चिम दिशामें लगभग एक कोसके अन्तरपर जङ्गलमें अति पवित्र भूमिमें बना है। जलकी सुविधाके लिये एक कूप है। दूसरा तालाब "रामसर" तीर्थरूप

है जो अभी खोदा जा रहा है, इसमें पक्के घाट बनाये जानेका आयोजन हो रहा है, तालाबके आसपास कई बीघोंमें उपयोगी वृक्ष लगे हैं। लगभग ५०० बीघे भूमि आश्रमसे लगी हुई गौओंके चरनेके लिये श्री लेफ्टिनेण्ट राव बलवीरसिंहजीने आश्रमके लिये प्रदान की है, जिसमें गौ, मृगादि स्वछन्द चरते हैं। इस बनमें शिकार नहीं खेला जाता।

इस समय आश्रममें एक ब्रह्मचर्य्याश्रम, अछूत पाठशाला, साधारण पाठशाला, कन्या पाठशाला और अतिथियों व सत्सङ्गियोंके ठहरनेका स्थान व एक पुस्तकालय है।

उद्देश

१—श्रीभगवानकी भक्तिका प्रचार करना।

२—गोरक्षण और उसके लिये गौचर भूमि छुड़वाना।

३—जङ्गलोंमें वृक्ष लगवाना और उसके बीचमें जलाशय बनवाना।

४—शिक्षाका प्रचार करना (जिसमें मनुष्यमात्र विद्यालाभ कर सकें) और प्राचीन प्रथाका फिर प्रचलित करना।

५—बीमारियोंके अवसर पर दवाई बांटना।

६—आसपासके ग्रामोंमें परस्परके झगड़े और वैमनस्या मिटाकर शान्ति और प्रेम बढ़ाना।

७—सब संस्थाओंमें भगवद्भक्ति और धर्म्मका भाव जाग्रत करना।

८—राजा और प्रजा सबहीका हित चिन्तन करना।

यह आश्रम नियमानुसार एक कमेटीकी संरक्षकतामें है। आश्रमसे 'सत्य शब्द संग्रह और 'सारसंग्रह' पुस्तक बिना मूल्य मिलती हैं।

"विज्ञापन"

काल कुंजर केशरी

जो लोग दीर्घ कालसे रोग, शोक, जन्म, मरण आदि आधि व्याधियोंसे अत्यन्त क्लेशित हो रहे हैं यदि काल कुंजर केशरी सेवन करें तो अवश्य ही पीड़ा शान्त हो जायगी मूल्य केवल अविरल भक्ति, डाक व्यय सत्संग, पैकिंग विश्वास, अनुपान षट् वैरी चूर्ण और प्रेम रस, पथ्यादि नियम यथा विधि सत्य सनातन वेद विदित कर्म, निषेध विषयके अनुरागकी वृद्धि और विशेष गुण सेवनहीसे विदित होगा।

१—अभ्यासकी चक्कीमें नामके गेहूंको पीस, चित्तकी एकाग्रताका आटा उससे निकाल, फिर आंखोंके पानीसे उस आटेको गूंद, और प्रेमकी आगपर उसकी रोटी पका कर खावे ताकि तेरी रूहको सेरी हो और तू मरता २ बच रहे।

२—प्रातःकाल उठ और यह पढ़ः—

"जाग जाग हो आज़ाद अय स्वरूप मेरे"

"दुनियां हट दूर परे अब तो मैं जाग उठा हूं"

भागती फिरती थी दुनियां, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की, तो बे करार आने को है॥
मरना भला है उसका, जो अपने लिये जीये।
जीता है जो मर चुका, इन्सानके लिये॥

———

इस पुस्तककी छपाईका व्यय सेठ मुन्नालाल हरसुखराय
जानकीदास बागला भिवानी निवासीने धर्मार्थ
बांटनेके लिये दिया है।

मिलनेका पता—

भगवद्भक्ति आश्रम

रामपुर पो० रेवाड़ी

जि० गुड़गांवा

(पंजाब)

जगदीशनारायण तिवारी द्वारा

"वाणिक् प्रेस"

१, सरकार लेन, कलकत्तामें मुद्रित।